REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 11 | AUGUST - 2018

मुक्तिबोध रचित 'एक साहित्यिक ड़ायरी' में अनुभूतिपक्ष की प्रधानता

डॉ. गोविन्द के. नंदाणिया
श्री एस. आर. भाभोर आट्र्स कॉलेज, सींगवड.

प्रस्तावना :

"गन्ध से सुकोमल मेघों में डूबकर
प्रत्येक वृक्ष से करता हूँ पहचान
प्रत्येक पुष्प से पूछता हूँ हाल–चाल
प्रत्येक लता से करता हूँ सम्पर्क"[1]

कहने की आवश्यकता नहीं है कि मुक्तिबोध जन–मन के कवि हैं। जो जन–मन की वेदना को भी भली–भांति जानते पहचानते, परखते हैं। इसलिए इनके काव्य में संवेदना यत्र–तत्र–सर्वत्र दिखाई देती है। इसी क्रम में ये कहें कि यह संवेदना का काव्य है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी परन्तु इनकी काव्य संवेदना पर विचार करने से पहले 'संवेदना' का अर्थ जानना नितान्त आवष्यक है।

साधारणतः 'संवेदना' शब्द अंग्रेजी के 'सेंसीबिलिटी' का हिन्दी पर्याय है। जिसका अर्थ– भावप्रणता, भावुकता होता है। आजकल इसका प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है परन्तु काव्य के संदर्भ में यह अर्थ भ्रामक और अस्पष्ट प्रतीत होता है लेकिन यदि 'संवेदना' शब्द पर गहराई से चिन्तन किया जाये तो यह केवल भाव प्रणवता और भावुकता तक ही सीमित नहीं है। यह अपने केलवर में ज्ञान और विवके को भी आत्मसात कर लेता है। इस तरह 'संवेदना' शब्द के कलेवर में बौद्धिक चेतना भी समाहित रहती है। स्वयं मुक्तिबोध ने कहा है, "मानसिक प्रतिक्रिया में संवेदना अन्तर्भूत है, किन्तु उसमें दृष्टि या दृष्टिकोण भी अन्तर्भूत है।"[2] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दृष्टिकोण का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति की बौद्धिक चेतना से है। अतः बौद्धिकता के समाहन के कारण संवेदना शब्द भावुकता और भावप्रवणता तक ही सीमित नहीं रहता। यह अपने केलवर में विस्तृत भाव भूमि को समाहित किए हुए है। अतः संवेदना का अर्थ है – "ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव या ज्ञान। साहित्यिक संदर्भ में संवेदनशीलता मन की प्रतिक्रिया की शक्ति है, जिसके द्वारा संवेदनशील व्यक्ति दूसरे किसी व्यक्ति के सुख–दुख को समझकर उसेस अपना तादात्म्य कर लेता है।"[3] अतः हम कह सकते हैं कि "संवेदना वह यंत्र है जिसके सहारे जीवयष्टि अपने से इतर सबके साथ सम्बन्ध जोड़ती है– वह सम्बन्ध एक साथ ही एकता का भी है और भिन्नता का भी है क्योंकि उसके सहारे जहाँ जीवयष्टि अपने से इतर जगत् को पहचानती है, वहाँ उससे अपने को अलग भी करती है।"[4] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संवेदना का सीधा सम्बन्ध चेतना से है जो कवि को इस जगत से जोड़ती हुई दोनों की विशिष्टता को भी बनाए रखती है।

साहित्य में संवदेना तत्त्व की अभिव्यक्ति शब्दों के माध्यम से की जाती है। कवि इस अभिव्यक्ति के लिए अभिव्यंजना कौशल का सहारा लेता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कवि काव्य–संवेदना की अभिव्यक्ति में

पारंगत है जिसकी काव्य–संवेदना का आधार तत्कालीन सामाजिक परिवेश है जिसको अनुभूत कर वह 'स्व' और 'पर' को अभिव्यक्त करता है। मुक्तिबोध की काव्य–संवेदना को रूप और दिशा देने में मालवा का प्राकृतिक सौंदर्य मानवीय सुख–दुख तालस्ताय की लोकमंगल की भावना से प्रभावित जीवन दृष्टि, जीवन–शक्ति सम्बन्धी सिद्धांत और मार्क्सवाद ने इनकी चेतना को प्रत्यक्ष– अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है।

'तारसप्तक' की कविताओं में मुक्तिबोध छायावादी संस्कारों और प्रभावों से मुक्ति पाना चाहते थे साथ ही काव्य को एक ऐसी दिशा भी देना चाहते थे जहाँ से मानवीय पीड़ाओं को व्यक्त किया जा सके परन्तु मुक्तिबोध की कविता में छायावादी प्रभाव भाषा पर तो दिखाई देता है लेकिन उनके कथ्य पर नहीं। छायावादी पदावली, चित्रात्मकता एवं रहस्यवाद के स्वर इनकी 'मृत्यु और कवि' नामक कविता में देखने को मिलते हैं–

''घनी रात, बादल रिमझिम हैं, दिशा मूक, निस्तब्ध बनान्तर।
व्यापक अन्धकार में सिकुड़ी सोई नर की बस्ती भयंकर।
है निस्तब्ध गगन, रोती सी सरिता धार चली फहराती।
जीवन लीला को समाप्त कर मरण सेज पर है कोई नर।।''[5]

मुक्तिबोध मार्क्सवादी प्रगति में आस्था नहीं रखते क्योंकि वह समाज असत्य और अन्याय को बढ़ावा देता है। इस प्रकार कवि पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध करता है क्योंकि पूँजीपति वर्ग स्वार्थ से परिपूर्ण है, जिससे उनके प्रति घृणा का भाव पैदा हुआ तथा जीवन–जगत् में कड़े संघर्षों के कारण तथा साथ ही विद्रोह की असफलता के कारण उनके व्यक्तित्व में एकाकीपन का भाव भी आ गया था। इनकी 'अन्तर्दर्शन' नामक कविता का भावचित्र दर्शनीय है।

''मैं अपने में ही जब खोया तो अपने से ही कुछ पाया।
निज का उदासीन विश्लेषण आँखों में आँसू भर लाया।
मेरा जग में द्रोह हुआ पर मैं अपने से ही विद्रोही।
गहरे असन्तोष की ज्वाला सुलग जलाती है मुझको ही।।
मेरा मन गलता निज में जब अपने से ही हार खा चुका।
दारूण क्षोभ–अग्नि में अपना प्रायश्चित–प्रसाद पा चुका।।''[6]

मुक्तिबोध ने 'तारसप्तक' में असंतोष के भाव प्रकट किए हैं वहीं 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में भी एक तरफ जहाँ असंतोष दिखाई देता है वही दूसरी तरफ आत्मविश्वास का भाव भी दिखाई देने लगा है, वहीं क्षोभ भावना भी कम हुई है।

इनके काव्य में एक तरफ जहाँ संशय पीड़ित ईश्वरवादिता का भाव दिखाई देता है वहीं दूसरी तरफ मानवतावाद का भाव भी प्रचूर मात्रा में मिलता है। मानवता के इस भाव से कवि आज के व्यक्ति की घुटन असहायता और छटपटाहट को व्यक्त करते हैं तथा उसकी मुक्ति का मार्ग खोजते दिखाई देते हैं। वे सच्चे मानवतावादी का थे। देखिए–

''सृजनशील जीवन के स्वर में गाओ मरण–गीत तुम सुन्दर
तुम कवि हो, ये फैल चले मृदु गीत निबल मानव के घर–घर
ज्योतित हों मुख नव आशा से, जीवन की गति जीवन का स्वर।''[7]

मुक्तिबोध की 'तारसप्तक' में संगृहीत कविताओं में मानव की नगण्यता के साथ–साथ क्षण का महत्त्व भी दिखाई देता है। केवल यहीं नहीं 'तारसप्तक' की कविताओं में मुक्तिबोध की काव्य–संवेदना, छायावाद के स्वच्छन्दतावाद, रहस्यवाद, व्यक्तिवाद एवं एकाकीपन और साथ ही प्रगतिवाद की सामाजिकता भी दिखाई देती है, जिनका विकसित रूप 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' नामक काव्य संग्रह में अपने परिपूर्ण विकास और कला–सौन्दर्य के साथ दिखाई देता है। केवल यहीं नहीं मुक्तिबोध की काव्य–संवेदना का एक आयाम यह भी है कि उन्होंने मानव जीवन के सुख–दुखात्मक पक्ष, उसकी हताशा– निराशा और प्रताड़ना आदि के प्रति संवेदना व्यक्त करके मानव–मुक्ति को महत्त्व दिया है।

मुक्तिबोध आम आदमी के कवि हैं। वे प्रत्येक व्यक्ति की भावना उसकी आकांक्षा और वेदना को सहज रूप से ही समझने वाले हैं। वे आम आदमी के प्रति पूर्णतः समर्पित व्यक्तित्व हैं। वे अपनी इसी सहानुभूतिपरक एवं समर्पण भावना का वर्णन करते हुए कहते हैं।

''विशाल श्रमशीलता की जीवन्त
मूर्तियों के चेहरे पर
झुलसी हुई आत्मा की अनगिन लकीरें
मुझें जकड़ लेती है अपने में, अपना सा जानकर
बहुत पुरानी किसी निजी पहचान से।''[8]

मुक्तिबोध की काव्य–संवेदना एवं निष्ठा का स्रोत साधारण से साधारण व्यक्ति की श्रमशीलता एवं कर्मशीलता में निहित है। यहीं से उनके अन्तस् में सृजनात्मकता का भाव उत्पन्न होता है। उन्हीं की आत्मा का दर्द कवि के अन्तर्मन को झकझोरता है और संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। गर्भवती नारी को श्रमरत देखकर कवि की भाव प्रवणता देखिए –

''आखों में तैरता है चित्र एक
उर में सँभाले दर्द
गर्भवती नारी का
कि जो पानी भरती है वजनदार घड़ों से,
कपड़ों को धोती है भाड़–भाड़
घर में काम बाहर के काम सब करती है
अपनी सारी थकान के बावजूद।
करती है वह इतना काम
क्यों किस आशा पर ?''[9]

यह श्रमशीला गर्भवती नारी निराला की 'तोड़ती पत्थर' नामक कविता की याद दिलाती है। साथ ही मुक्तिबोध की निम्नलिखित पंक्तियों को पढ़कर हमें प्रेमचन्द क मानवतावादी दृष्टिकोण का स्मरण हो आता है –

''दूर–दूर मुफलिसी के टूटे फूटे घरों में
सुनहले चिराग बल उठते हैं,
आधी – अँधेरी शाम
ललाई में निलाई से नहाकर
पूरी झुक जाती है
वे दाढ़ी–धारी देहाती मुसलमान चाचा और
बोझा उठाए हुए
माँए, बहनें बेटियाँ–
सबको ही सलाम करने की इच्छा होती है।''[10]

मुक्तिबोध को काव्य संवेदना आमजन से प्राप्त है लेकिन निराला और प्रेमचन्द के साहित्य में जो मानवतावादी दृष्टि का प्राण है वैसा मुक्तिबोध के काव्य में दुर्लभ है। प्रेमचन्द जन सामान्य के प्रति अपनी संवेदना का दान देकर स्वयं खाली से दिखाई देते हैं, वे अपने पास कुछ बचाकर नहीं रखते लेकिन मुक्तिबोध इतने तटस्थ दिखाई नहीं देते। इनके 'आत्म' का संघर्ष उन्हें सामान्य नहीं होने देता बल्कि विशिष्टता की ओर ले जाता है। यही कारण है कि मुक्तिबोध की मानवीय–संवेदना प्रेमचन्द से अलग है। मुक्तिबोध की मानवीय संवेदना और उनकी बौद्धिक चेतना उन्हें अनेक स्तरों पर संघर्ष के लिए प्रेरित करती है। जिससे मुक्तिबोध आमजन की ओर से संघर्ष करने के लिए प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं। उन्हें प्रतीत होता है–

''उन्हें भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में

चमकता हीरा है,
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है,
प्रत्येक सुस्मित में विमल सदानीरा है
मुझें भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में
पल–पल में सब में गुजरना चाहता हूँ,
प्रत्येक उर में तिर आना चाहता हूँ।''[11]

मुक्तिबोध की काव्य–संवेदना साधारणजन की पीड़ा और सामाजिक विषमता को अभिव्यक्त करने वाली हैं। सामान्य आदमी से उनका नाता बहुत गहरा था। उनकी प्रत्येक पीड़ा कवि के मन में कसक पैदा करने वाली है, आमजंन से यह नाता उतरोत्तर गहरा होता गया। जिसके फलस्वरूप वे वेदना को अपने काव्य में पिरोने के लिए उद्धत दिखाई देते हैं।

मुक्तिबोध जी ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति में गहरी आस्था रखते थे, साथ ही शहरी सभ्यता के दिखावटी परिवेश को भी भली भांति जानते थे। 'मुझे याद आते हैं' नामक कविता में कवि ने शहर और ग्राम दोनों को एक साथ प्रस्तुत किया है लेकिन ग्रामीण परिवेश का सहजता एवं यथार्थ भाव देखते ही बनता है। नगरीय जीवन के सत्य को उद्घाटित करते हुए वे कहते हैं–

''समस्त स्वर्गीय चमचमाते आभालोक वाले
इस नगर का निजत्व जादुई
कि रंगीन मायाओं का प्रदीप्त पुँज यह
नगर है अयथार्थ।''[12]

कवि नगर के बनावटीपन को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है और बताता है कि शहरी सभ्यता में सर्वत्र आड़म्बर भरा पड़ा है, वे वास्तविकता से कोसों दूर हैं। नगरीय अयथार्थ को मुक्तिबोध ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

''पावडर में सफेद और गुलाबी
छिपे बड़े–बड़े चेचक के दाग मुझे दीखते हैं
सभ्यता के चेहरे पर।''[13]

मुक्तिबोध का मन अत्यधिक संवेदनशील है। वे दीन–हीन व्यक्ति की दशा को देखकर बेचैन हो जाते हैं और चिन्तन करते हैं–

''मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी सुन्दर व शोषण–मुक्त
कब होगें ?''[14]

इस प्रकार मुक्तिबोध मानव कल्याण की बात करते हैं। उनके भविष्य को लेकर चिन्तित हैं। वे सर्वजन हित चिन्तन करते हैं, शोषण–मुक्त समाज की कामना करते हैं। ये मानव विकास को लेकर चिन्तित एवं तनावग्रस्त दिखाई देते हैं। अतः मुक्तिबोध मनुष्य की सम्पूर्ण हालात के कवि थे। उन्होंने मानवीय अन्तःकरण को पक्षघात ग्रस्त देखा, पर यह नहीं माना कि वह मर चुका है बल्कि पूरी गहराई के साथ उन्होंने उम्मीद की और विश्वास किया कि वह होश में लाया जा सकता है और उसका पुनर्वास किया जा सकता है।''[15] मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' नामक कविता भी इसी तरह से संदेश देती दिखाई देती है जो अतीत से अर्जित ज्ञान को भविष्य के सेतु का कार्य करके विकास के मार्ग प्रशस्त करती है। इस तरह मुक्तिबोध इस कविता में अतीत की बौद्धिक चेतना को वर्तमान में समर्पित कर देना चाहते हैं।

मुक्तिबोध अपनी सांस्कृतिक विरासत को संजोये रखना चाहते हैं क्योंकि कोई भी परिवर्तन और विकास परम्परा का त्याग करके नहीं अपितु उस अतीत परम्परा से नई चेतना एवं नई दृष्टि उत्पन्न कर तदानुरूप आगे

बढ़कर आता है। इसी प्रकार 'एक अन्तर्कथा' नामक कविता में बताया है कि आज के सुविधाभोगी समाज में सफलता प्राप्त करने के लिए अनेक तरीके अपनाये जाते है परन्तु इस सारे क्रियाकलाप में अतीत से संचित ज्ञानकोश को हेय समझकर त्याग दिया जाता है लेकिन संस्कृति की अनुपालक एवं अनुरक्षक माँ अपने दायित्व का निर्वहन करती है। इस संदर्भ में कवि की संवेदना दर्शनीय है–

''अन्तर्जीवन के मूल्यवान जो संवेदन
उनका विवेक–संगत प्रयोग हो सका नहीं
कल्याणकारी करूणाएँ फेंकी गई
रास्ते पर कचरे जैसी
मैं चीह्न रही उनको
जो गहन अग्नि के अधिष्ठान
हैं प्राणवान्
मैं बीन रही उनको.... ।''[16]

मुक्तिबोध की अन्तिम कविता 'अन्धेरे में' आत्म साक्षात्कार के द्वन्द्व की पारदर्शी कविता है। इसमें एक तरफ तो व्यक्ति के मनोजगत् का द्वन्द्व है दूसरी तरफ समाज की विभिन्न स्थितियों का। इसमें मध्यमवर्गीय व्यक्ति के मन में द्वन्द्व की अभिव्यक्ति है जो अव्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष करना चाहता है क्योंकि उसका स्वभाव सब कुछ सहेजने का है। ''सामंजस्य स्थापना के फलस्वरूप सब लोग टूट गए हैं, उनके दिल की कई फाँके हो गई है।''[17] इसी तरह कविता में अनजान व्यक्ति का चित्र अन्दर और बाहर दोनों जगह बनता है। तभी तालाब के नजदीक बिजली की चमक के साथ ही तिलस्मी शिला का द्वार खोलकर 'रक्तालोकस्नात पुरूष' प्रकट होता है। यह 'रक्तालोकस्नात पुरूष' कौन है ? वाचक से इसका संबंध क्या है ? वाचक भ्रमपूर्वक इसे मनु समझ लेता है परन्तु बाद में वह अंगीकार भी करता है–

''वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक न पाई गई मेरी अभिव्यक्ति है,
पूर्ण अवस्था वह,
निज संभावनाओं, निहित प्रभावों, प्रतिभाओं की
मेरे परिपूर्ण का अविर्भाव
हृदय में रिस रहे, ज्ञान का तनाव वह
आत्मा की प्रतिमा।''[18]

इस अभिव्यक्ति से कवि एक तरफ सामाजिक अन्धकार को दूर करना चाहता है वहीं दूसरी तरफ काव्य सरोकर तथा कविता की रचना प्रक्रिया पूरी होने की बात करता है। इस प्रकार ''मुक्तिबोध के लिए मानव की रचना और कविता की रचना एक साथ चलती हैं।''[19] कविता में वर्णित अन्धकार सामाजिक अव्यवस्था की ओर संकते करता है तथा अन्धेरे से दूर होने से तात्पर्य सामाजिक अव्यवस्था के समाप्त होने से है केवल यही नहीं कवि के मन में छाया अन्धकार उनकी रचना–प्रक्रिया से पूर्व की अमूर्तता को भी व्यक्त करता है। इसी प्रकार कवि की संवेदना भी अंधकार से घिरी हुई है।

समकालीन व्यवस्था में भ्रष्टाचार और षड्यंत्र किस तरह हावि हो गए हैं, एक चिन्तनीय विषय है। कवि ने वर्तमान व्यवस्था का कच्चा चिट्ठा खोलते हुए कहा है–

''गहन मृतात्माएं इसी नगर की
हर रात जुलूस में चलती
परन्तु दिन में
बैठती है मिलकर करती हुई षड़यंत्र
विभिन्न दफ्तरों कार्यालयों, केन्द्रों में घरों में

हाय, हाय ! मैंने उन्हें देख लिया नंगा।''[20]

लेकिन कवि इस सारे परिवेश से संघर्ष करता है और अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने को तत्पर है–

''अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब।
पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी बाँहे।''[21]

वाचक' अन्धेरी गलियों में दमतोड़ भागता हुआ कई मोड़ पार कर जाता है तो कोई उसे गुप्त पर्चा दे जाता है जिसमें अनेक सामाजिक वेदनाओं की चर्चा की गई है वह उन्हें पढ़कर पर्याप्त मात्रा में आश्चर्यचकित होता है–

''आश्चर्य !
उसमें तो मेरे ही गुप्त विचार व
दबी हुई संवेदनाएं व अनुभव
पीड़ाएँ जगमगा रही हैं।''[22]

तभी 'वाचक' अपनी संवेदनात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति करता है और कहता है कि वर्तमान समाज में छल प्रपंच और अव्यवस्था और अधिक नहीं चल सकती। कवि समाज की दशा और दिशा में सुधार करने के लिए सतत् रूप से लालायित है–

''कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह दूँ
वर्तमान समाज चल नहीं सकता।
पूँजी से जुड़ा हृदय बदल नहीं सकता
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को
जन को।''[23]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि मुक्तिबोध की काव्य संवेदना अपने कलेवर में सामान्यजन की वेदना को समाहित किए हुए हैं। इनकी इसी विशेषता के कारण इन्हें 'सत्‌चित् आनन्द' का कवि कहा गया है। इन्होंने अपने कथ्य में निम्न मध्यमवर्गीय व्यक्ति के संघर्ष को भी स्थान दिया है और बताया है कि वह किस तरह यथार्थ और आदर्श के मध्य द्वन्द्व में फंसा हुआ है, इस भाव सत्य की अभिव्यक्ति मुक्तिबोध के काव्य में मिलती है। मुक्तिबोध व्यक्ति और समाज को सुखी देखना चाहते हैं, साथ ही उसे शोषण मुक्त कर नयी दिशा देने की कामना भी करते हैं। वे अपने काव्य में सब कुछ समेटना चाहते हैं जिससे उनके काव्य–संवेदना में अन्तर्विरोध दिखाई देता है परन्तु अन्तर्विरोधों के रहते हुए भी कवि महान् हो सकता है। यदि वह अपने अन्तर्विरोधों अपने अन्तर्विरोधों को दूर करने के लिए सक्रिय हैं। यह उनकी कर्मण्यता और सक्रियता ही है कि वे समाज के उत्थान के लिए सदैव संघर्षरत दिखाई देते है। अतः संघर्ष में विश्वास करने वाले मुक्तिबोध की काव्य संवेदना आलोकपूर्ण है जिसके मूल में विकास और नव निर्माण का भाव छिपा हुआ है। यदि काव्य में आए अन्तर्विरोधों की बात करें तो उसमें भी सृजनात्मक दिखाई देती है जो इनकी काव्य संवेदना को नयी भाव भूमि प्रदान करती है।

संदर्भ सूत्र

1. मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा हैं, पृ. 88
2. मुक्तिबोध, एक साहित्यिक की ड़ायरी, पृ. 136,
3. सम्पा. डॉ. नगेन्द्र, मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड) पृ. 234,
4. अज्ञेय, हिन्दी साहित्यः एक आधुनिक परिदृश्य, पृ. 17,
5. सम्पा. अज्ञेय, 'तारसप्तक' में संग्रहीत कविताएं, पृ. 56,

6. वही, वही, पृ. 67,
7. वही, वहीं, पृ. 56
8. मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा हैं, पृ. 81,
9. वही., वहीं, पृ. 80
10. वही., वहीं, पृ. 81
11. वही., वहीं, पृ. 78
12. वही., वहीं,. वहीं
13. वही., वहीं, पृ. 79
14. तारसप्तक, पृ. 162
15. अशोक वाजपेयी, फिलहाल, पृ. 119
16. मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा हैं, पृ. 119,
17. वही, एक साहित्यिक की डायरी, पृ. 43
18. मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा हैं, पृ. 263,
19. डा. इन्द्रनाथ महान, आलोचना और आलोचना, पृ. 145
20. मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा हैं, पृ. 274–275,
21. वहीं, वहीं, पृ. 299
22. वहीं, वहीं, पृ. 301
23. वहीं, वहीं, पृ. 303

डॉ. गोविन्द के. नंदाणिया
श्री एस. आर. भाभोर आट्‌र्स कॉलेज सींगवड.